रामचरित्मानस

बालकाण्ड

*** अवतार के हेतु

*** नारद का अभिमान और माया का प्रभाव

*** विश्वमोहिनी का स्वयंवर, शिवगणों को तथा भगवान् को शाप और नारद का मोहभंग

सोरठा :
*** सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥120 ख॥
भावार्थ:
हे पार्वती! निर्मल रामचरितमानस की वह मंगलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़जी ने सुना था॥120 (ख)॥
*** सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब। सुनहु राम अवतार चरति परम सुंदर अनघ॥120 ग॥
भावार्थ:
वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा। अभी तुम श्रीरामचन्द्रजी के अवतार का परम सुंदर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो॥120(ग)॥
*** हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित। मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु॥120 घ॥
भावार्थ:
श्री हरि के गुण, मान, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। फिर भी हे पार्वती! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ तुम आदरपूर्वक सुनो॥120 (घ)॥
चौपाई :
*** सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥ हरि अवतार हेतु जेहि होई।

इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥1॥

भावार्थ:

हे पार्वती! सुनो, वेद-शास्त्रों ने श्री हरि के सुंदर, विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं, जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता)॥1॥

*** राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥ तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥2॥

भावार्थ:

हे सयानी! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्री रामचन्द्रजी की तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं॥2॥

*** तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥ जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥3॥

भावार्थ:

और जैसा कुछ मेरी समझ में आता है, हे सुमुखि! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ।जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं॥3॥

चौपाई :

*** करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥ तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥4॥

भावार्थ:

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गो, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं॥4॥

दोहा :

*** असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु। जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥121॥

भावार्थ:

वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री रामचन्द्रजी के अवतार का यह कारण है॥121॥

चौपाई :

*** सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥ राम जनम के हेतु अनेका।

परम बिचित्र एक तें एका॥1॥

भावार्थ:

उसी यश को गा-गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। कृपासागर भगवान भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। श्री रामचन्द्रजी के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर विचित्र हैं॥1॥

*** जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥ द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥2॥

भावार्थ:

हे सुंदर बुद्धि वाली भवानी! मैं उनके दो-एक जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। श्री हरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं॥2॥

*** बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥ कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥3॥

भावार्थ:

उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण (सनकादि) के शाप से असुरों का तामसी शरीर पाया। एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का हिरण्याक्ष। ये देवराज इन्द्र के गर्व को छुड़ाने वाले सारे जगत में प्रसिद्ध हुए॥3॥

*** बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥ होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥4॥

भावार्थ:

वे युद्ध में विजय पाने वाले विख्यात वीर थे। इनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान ने वराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा, फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह रूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रहलाद का सुंदर यश फैलाया॥4॥

दोहा :

*** भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान। कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥122॥

भावार्थ:

वे ही (दोनों) जाकर देवताओं को जीतने वाले तथा बड़े योद्धा, रावण और कुम्भकर्ण नामक बड़े बलवान और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत जानता है॥122॥

चौपाई :

*** मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥ एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥1॥

भावार्थ:

भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) इसीलिए मुक्त नहीं हुए कि

ब्राह्मण के वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। अतः एक बार उनके कल्याण के लिए भक्तप्रेमी भगवान ने फिर अवतार लिया॥1॥

*** कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥ एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥2॥

भावार्थ:

वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौसल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं॥2॥

*** एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥ संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥3॥

भावार्थ:

एक कल्प में सब देवताओं को जलन्धर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुःखी देखकर शिवजी ने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया, पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था॥3॥

*** परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥4॥

भावार्थ:

उस दैत्यराज की स्त्री परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी। उसी के प्रताप से त्रिपुरासुर (जैसे अजेय शत्रु) का विनाश करने वाले शिवजी भी उस दैत्य को नहीं जीत सके॥4॥

दोहा :

*** छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह। जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥123॥

भावार्थ:

प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान को शाप दिया॥123॥

चौपाई :

*** तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥ तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥1॥

भावार्थ:

लीलाओं के भंडार कृपालु हरि ने उस स्त्री के शाप को प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलन्धर उस कल्प में रावण हुआ, जिसे श्री रामचन्द्रजी ने युद्ध में मारकर परमपद दिया॥1॥

*** एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥ प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥2॥

भावार्थ:

एक जन्म का कारण यह था, जिससे श्री रामचन्द्रजी ने मनुष्य देह धारण किया। हे भरद्वाज

मुनि! सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है॥2॥

*** नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥ गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥3॥

भावार्थ:

एक बार नारदजी ने शाप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुईं (और बोलीं कि) नारदजी तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं॥3॥

*** कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥ यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥4॥

भावार्थ:

मुनि ने भगवान को शाप किस कारण से दिया। लक्ष्मीपति भगवान ने उनका क्या अपराध किया था? हे पुरारि (शंकरजी)! यह कथा मुझसे कहिए। मुनि नारद के मन में मोह होना बड़े आश्चर्य की बात है॥4॥

दोहा :

*** बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥124 क॥

भावार्थ:

तब महादेवजी ने हँसकर कहा- न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्री रघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है॥124 (क)॥

सोरठा :

*** कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु। भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद॥124 ख॥

भावार्थ:

(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! मैं श्री रामचन्द्रजी के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। तुलसीदासजी कहते हैं- मान और मद को छोड़कर आवागमन का नाश करने वाले रघुनाथजी को भजो॥124 (ख)॥

चौपाई :

***हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥ आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥1॥

भावार्थ:

हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुंदर गंगाजी बहती थीं। वह परम पवित्र सुंदर आश्रम देखने पर नारदजी के मन को बहुत ही सुहावना लगा॥1॥

*** निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥ सुमिरत हरिहि श्राप गति

बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥2॥

भावार्थ:

पर्वत, नदी और वन के (सुंदर) विभागों को देखकर नादरजी का लक्ष्मीकांत भगवान के चरणों में प्रेम हो गया। भगवान का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शाप की (जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापति ने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गई और मन के स्वाभाविक ही निर्मल होने से उनकी समाधि लग गई॥2॥

*** मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥ सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥3॥

भावार्थ:

नारद मुनि की (यह तपोमयी) स्थिति देखकर देवराज इंद्र डर गया। उसने कामदेव को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया (और कहा कि) मेरे (हित के) लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि भंग करने को) जाओ। (यह सुनकर) मीनध्वज कामदेव मन में प्रसन्न होकर चला॥3॥

*** सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥ जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥4॥

भावार्थ:

इन्द्र के मन में यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं। जगत में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं॥4॥

दोहा :

*** सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥125॥

भावार्थ:

जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डी को सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्र को (नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते) लाज नहीं आई॥125॥

चौपाई :

*** तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥ कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥1॥

भावार्थ:

जब कामदेव उस आश्रम में गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त ऋतु को उत्पन्न किया। तरह-तरह के वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल खिल गए, उन पर कोयलें कूकने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे॥1॥

*** चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥ रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥2॥

भावार्थ:

कामाग्नि को भड़काने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद और सुगंध) सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवांगनाएँ, जो सब की सब कामकला में निपुण थीं,॥2॥

*** करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥ देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥3॥

भावार्थ:

वे बहुत प्रकार की तानों की तरंग के साथ गाने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नानाप्रकार के खेल खेलने लगीं। कामदेव अपने इन सहायकों को देखकर बहुत प्रसन्नहुआ और फिर उसने नाना प्रकार के मायाजाल किए॥3॥

*** काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥ सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥4॥

भावार्थ:

परन्तु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही (नाश के) भय से डर गया। लक्ष्मीपति भगवान जिसके बड़े रक्षक हों, भला, उसकी सीमा (मर्यादा) को कोई दबा सकता है? ॥4॥

दोहा :

*** सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन। गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥126॥

भावार्थ:

तब अपने सहायकों समेत कामदेव ने बहुत डरकर और अपने मन में हार मानकर बहुत ही आर्त (दीन) वचन कहते हुए मुनि के चरणों को जा पकड़ा॥126॥

चौपाई :

*** भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥ नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥1॥

भावार्थ:

नारदजी के मन में कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेव का समाधान किया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपनेसहायकों सहित लौट गया॥1॥

दोहा :

*** मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥ सुनि सब कें मन अचरजु

आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥2॥

भावार्थ:

देवराज इन्द्र की सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनि की बड़ाई करके श्री हरि को सिर नवाया॥2॥

*** तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥ मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥3॥

भावार्थ:

तब नारदजी शिवजी के पास गए। उनके मन में इस बात का अहंकार हो गया कि हमने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव के चरित्र शिवजी को सुनाए और महादेवजी ने उन (नारदजी) को अत्यन्त प्रिय जानकर (इस प्रकार) शिक्षा दी-॥3॥

*** बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥ तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥4॥

भावार्थ:

हे मुनि! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझेसुनाई है, उस तरह भगवान श्री हरि को कभी मत सुनाना। चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना॥4॥

नारद का अभिमान और माया का प्रभाव

दोहा :

*** संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान। भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥127॥

भावार्थ:

यद्यपि शिवजी ने यह हित की शिक्षा दी, पर नारदजी को वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज! अब कौतुक (तमाशा) सुनो। हरि की इच्छा बड़ी बलवान है॥127॥

चौपाई :

*** राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥ संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्री शिवजी के वचन नारदजी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिए॥1॥

*** एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥ छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥2॥

भावार्थ:

एक बार गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथ में सुंदर वीणा लिए, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गए, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान वेदांतत्व) लक्ष्मी निवास भगवान नारायण रहते हैं॥2॥

*** हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥ बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥3॥

भावार्थ:

रमानिवास भगवान उठकर बड़े आनंद से उनसे मिले और ऋषि (नारदजी) के साथ आसन पर बैठ गए। चराचर के स्वामी भगवान हँसकर बोले- हे मुनि! आज आपने बहुत दिनों पर दया की॥3॥

*** काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥ अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥4॥

भावार्थ:

यद्यपि श्री शिवजी ने उन्हें पहले से ही बरज रखा था, तो भी नारदजी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान को कह सुनाया। श्री रघुनाथजी की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे वे मोहित न कर दें॥4॥

दोहा :

***रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान। तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥128॥

भावार्थ:

भगवान रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले- हे मुनिराज! आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिए तो कहना ही क्या है!)॥128॥

चौपाई :

*** सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥ ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥1॥

भावार्थ:

हे मुनि! सुनिए, मोह तो उसके मन में होता है, जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यव्रत में तत्पर और बड़े धीर बुद्धि हैं। भला, कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है?॥1॥

*** नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥ करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥2॥

भावार्थ:

नारदजी ने अभिमान के साथ कहा- भगवन! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान ने मन में विचारकर देखा कि इनके मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है॥2॥

*** बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥ मुनि कर हित मम कौतुक होई।

अवसि उपाय करबि मैं सोई॥3॥

भावार्थ:

मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेंकूँगा, क्योंकि सेवकों का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा, जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो॥3॥

*** तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥ श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥4॥

भावार्थ:

तब नारदजी भगवान के चरणों में सिर नवाकर चले। उनके हृदय में अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी सुनो॥4॥

दोहा :

*** बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार। श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥129॥

भावार्थ:

उस (हरिमाया) ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगर की भाँति-भाँति की रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान विष्णु के नगर (वैकुण्ठ) से भी अधिक सुंदर थीं॥129॥

चौपाई :

*** बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥ तेहिंपुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥1॥

भावार्थ:

उस नगर में ऐसे सुंदर नर-नारी बसते थे, मानो बहुत से कामदेव और (उसकी स्त्री) रति ही मनुष्य शरीर धारण किए हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नाम का राजारहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेना के समूह (टुकड़ियाँ) थे॥1॥

*** सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥ बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥2॥

भावार्थ:

उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रों के समान था। वह रूप, तेज, बल और नीति का घर था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक (ऐसी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जाएँ॥ 2॥

***सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥ करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥3॥

भावार्थ:

वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी। उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता

है। वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आए हुए थे॥3॥

***मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥ सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥4॥

भावार्थ:

खिलवाड़ी मुनि नारदजी उस नगर में गए और नगरवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आए। राजा ने पूजा करके मुनि को (आसन पर) बैठाया॥4॥

विश्वमोहिनी का स्वयंवर, शिवगणों तथा भगवान् को शाप और नारद का मोहभंग

दोहा :

*** आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि। कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥130॥

भावार्थ:

(फिर) राजा ने राजकुमारी को लाकर नारदजी को दिखलाया (और पूछा कि-) हे नाथ! आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण-दोष कहिए॥130॥

चौपाई :

***देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥ लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥1॥

भावार्थ:

उसके रूप को देखकर मुनि वैराग्य भूल गए और बड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गए। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गए और हृदय में हर्षित हुए, पर प्रकट रूप में उन लक्षणों को नहीं कहा॥1॥

*** जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥ सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥2॥

भावार्थ:

(लक्षणों को सोचकर वे मन में कहने लगे कि) जो इसे ब्याहेगा, वह अमर हो जाएगा और रणभूमि में कोई उसे जीत न सकेगा। यह शीलनिधि की कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे॥2॥

*** लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥ सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥3॥

भावार्थ:

सब लक्षणों को विचारकर मुनि ने अपने हृदय में रख लिया और राजा से कुछ अपनी ओर से बनाकर कह दिए। राजा से लड़की के सुलक्षण कहकर नारदजी चल दिए। पर उनके मन में यह चिन्ता थी कि- ॥3॥

*** करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥ जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥4॥

भावार्थ:

मैं जाकर सोच-विचारकर अब वही उपाय करूँ, जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप से तो कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी?॥4॥

दोहा :

*** एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल। जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥131॥

भावार्थ:

इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल (सुंदर) रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाए और तब जयमाल (मेरे गले में) डाल दे॥131॥

चौपाई :

*** हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥ मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥1॥

भावार्थ:

(एक काम करूँ कि) भगवान से सुंदरता माँगूँ, पर भाई! उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जाएगी, किन्तु श्री हरि के समान मेरा हितू भी कोई नहीं है, इसलिए इस समय वे ही मेरे सहायक हों॥1॥

*** बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥ प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥2॥

भावार्थ:

उस समय नारदजी ने भगवान की बहुत प्रकार से विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु (वहीं) प्रकट हो गए। स्वामी को देखकर नारदजी के नेत्र शीतल हो गए और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जाएगा॥2॥

*** अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥ आपन रूप देहु प्रभु मोहीं। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥3॥

भावार्थ:

नारदजी ने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनाई (और प्रार्थना की कि) कृपा कीजिए और कृपा करके मेरे सहायक बनिए। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिए और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता॥3॥

*** जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥ निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥4॥

भावार्थ:

हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिए। मैं आपका दास हूँ। अपनीमाया का विशाल बल देख दीनदयालु भगवान मन ही मन हँसकर बोले-॥4॥

दोहा :

*** जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥132॥

भावार्थ:

हे नारदजी! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता॥132॥

चौपाई :

*** कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥ एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥1॥

भावार्थ:

हे योगी मुनि! सुनिए, रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है। ऐसा कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए॥1॥

*** माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥ गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥2॥

भावार्थ:

(भगवान की) माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गए कि वे भगवान की अगूढ़(स्पष्ट) वाणी को भी न समझ सके। ऋषिराज नारदजी तुरंत वहाँ गए जहाँ स्वयंवर की भूमि बनाई गई थी॥2॥

*** निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥ मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥3॥

भावार्थ:

राजा लोग खूब सज-धजकर समाज सहित अपने-अपने आसन पर बैठे थे। मुनि (नारद) मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुंदर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरे को न वरेगी॥3॥

*** मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥ सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥4॥

भावार्थ:

कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, पर यह चरित कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया॥4॥

दोहा :

*** रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ। बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥133॥

भावार्थ:

वहाँ शिवजी के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बनाकर सारी लीला देखते-फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे॥133॥

चौपाई :

*** जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥ तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥1॥

भावार्थ:

नारदजी अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, ये शिवजी के दोनों गण भी वहीं बैठ गए। ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी इस चाल को कोई न जान सका॥1॥

*** करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥ रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥2॥

भावार्थ:

वे नारदजी को सुना-सुनाकर, व्यंग्य वचन कहते थे- भगवान ने इनको अच्छी 'सुंदरता' दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जाएगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्हीं को खास तौर से वरेगी॥2॥

*** मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥ जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥3॥

भावार्थ:

नारद मुनि को मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ (माया के वश) में था। शिवजी के गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी हुई होने के कारण वे बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं (उनकी बातों को वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे)॥3॥

*** काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥ मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही॥4॥

भावार्थ:

इस विशेष चरित को और किसी ने नहीं जाना, केवल राजकन्या ने (नारदजी का) वह रूप देखा। उनका बंदर का सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया॥4॥

दोहा :

*** सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल। देखत फिरइ महीप सब कर सरोज

जयमाल॥134॥

भावार्थ:

तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल जैसे हाथों में जयमाला लिए सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी॥134॥

चौपाई :

*** जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥ पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥1॥

भावार्थ:

जिस ओर नारदजी (रूप के गर्व में) फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिवजी के गण मुसकराते हैं॥1॥

*** धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥ दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥2॥

भावार्थ:

कृपालु भगवान भी राजा का शरीर धारण कर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान दुलहिन को ले गए। सारी राजमंडली निराश हो गई॥2॥

*** मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥ तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥3॥

भावार्थ:

मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गई थी, इससे वे (राजकुमारी को गई देख) बहुत ही विकल हो गए। मानो गाँठ से छूटकर मणि गिर गई हो। तब शिवजी के गणों ने मुसकराकर कहा- जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखिए!॥3॥

*** अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥ बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥4॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनि ने जल में झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजी के उन गणों को अत्यन्त कठोर शाप दिया-॥4॥

दोहा :

*** होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ। हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥135॥

भावार्थ:

तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। अब फिर किसी मुनि की हँसी करना।135॥

चौपाई :

*** पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥ फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥1॥

भावार्थ:

मुनि ने फिर जल में देखा, तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया, तब भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। उनके होठ फड़क रहे थे और मन में क्रोध (भरा) था। तुरंत ही वे भगवान कमलापति के पास चले॥1॥

*** देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥ बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥2॥

भावार्थ:

(मन में सोचते जाते थे-) जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत में मेरी हँसी कराई। दैत्यों के शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्ते में ही मिल गए। साथ में लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थीं॥2॥

*** बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥ सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥3॥

भावार्थ:

देवताओं के स्वामी भगवान ने मीठी वाणी में कहा- हे मुनि! व्याकुल की तरह कहाँ चले? ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण मन में चेत नहीं रहा॥3॥

*** पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥ मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥4॥

भावार्थ:

(मुनि ने कहा-) तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया॥4॥

दोहा :

*** असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु। स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥136॥

भावार्थ:

असुरों को मदिरा और शिवजी को विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुंदर (कौस्तुभ) मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपट का व्यवहार करते हो॥136॥

चौपाई :

*** परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥ भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू॥1॥

भावार्थ:

तुम परम स्वतंत्र हो, सिर पर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मन को भाता है, (स्वच्छन्दता से) वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो। हृदय में हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते॥1॥

*** डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥ करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥2॥

भावार्थ:

सबको ठग-ठगकर परक गए हो और अत्यन्त निडर हो गए हो, इसी से (ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अब तक तुम को किसी ने ठीक नहीं किया था॥2॥

*** भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥ बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥3॥

भावार्थ:

अबकी तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे जैसे जबर्दस्त आदमी से छेड़खानी की है।) अतः अपने किए का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है॥3॥

*** कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥ मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥4॥

भावार्थ:

तुमने हमारा रूप बंदर का सा बना दिया था, इससे बंदर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। (मैं जिस स्त्री को चाहता था, उससे मेरा वियोग कराकर) तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होंगे॥4॥

दोहा :

*** श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि॥ निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥137॥

भावार्थ:

शाप को सिर पर चढ़ाकर, हृदय में हर्षित होते हुए प्रभु ने नारदजी से बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली॥137॥

चौपाई :

*** जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥ तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥1॥

भावार्थ:

जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गईं, न राजकुमारी ही। तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्री हरि के चरण पकड़ लिए और कहा- हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले! मेरी रक्षा कीजिए॥1॥

*** मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥ मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥2॥

भावार्थ:

हे कृपालु! मेरा शाप मिथ्या हो जाए। तब दीनों पर दया करने वाले भगवान ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा (से हुआ) है। मुनि ने कहा- मैंने आप को अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?॥2॥

*** जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥ कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥3॥

भावार्थ:

(भगवान ने कहा-) जाकर शंकरजी के शतनाम का जप करो, इससे हृदय में तुरंत शांति होगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना॥3॥

***जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥ अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥4॥

भावार्थ:

हे मुनि ! पुरारि (शिवजी) जिस पर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आएगी॥4॥

दोहा :

*** बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान। सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥138॥

भावार्थ:

बहुत प्रकार से मुनि को समझा-बुझाकर (ढाँढस देकर) तब प्रभु अंतर्द्धान हो गए और नारदजी श्री रामचन्द्रजी के गुणों का गान करते हुए सत्य लोक (ब्रह्मलोक) को चले॥138॥

चौपाई :

*** हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥ अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुहाए॥1॥

भावार्थ:

शिवजी के गणों ने जब मुनि को मोहरहित और मन में बहुत प्रसन्न होकर मार्ग में जाते हुए देखा तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारदजी के पास आए और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले-॥1॥

*** हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥ श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥2॥

भावार्थ:

हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिवजी के गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया। हे कृपालु! अब शाप दूर करने की कृपा कीजिए। दीनों पर दया करने वाले नारदजी ने कहा-॥2॥

*** निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥ भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥3॥

भावार्थ:

तुम दोनों जाकर राक्षस होओ, तुम्हें महान ऐश्वर्य, तेज और बल की प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओं के बल से जब सारे विश्व को जीत लोगे, तब भगवान विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे॥3॥

*** समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥ चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥4॥

भावार्थ:

युद्ध में श्री हरि के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसार में जन्म नहीं लोगे। वे दोनों मुनि के चरणों में सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए॥4॥

दोहा :

*** एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार। सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुमि भार॥139॥

भावार्थ:

देवताओं को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था॥139॥

चौपाई :

*** एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥ कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार भगवान के अनेक सुंदर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्प में जब-जब भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुंदर लीलाएँ करते हैं,॥1॥

*** तब-तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥ बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं

न सुनि आचरजु सयाने॥2॥

भावार्थ:

तब-तब मुनीश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनको सुनकर समझदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते॥2॥

*** हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥ रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥3॥

भावार्थ:

श्री हरि अनंत हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनंत है। सब संत लोग उसे बहुत प्रकार से कहते-सुनते हैं। श्री रामचन्द्रजी के सुंदर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाए नहीं जा सकते॥3॥

*** यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥ प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥4॥

भावार्थ:

(शिवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! मैंने यह बताने के लिए इस प्रसंग को कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान की माया से मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत का हित करने वाले हैं। वे सेवा करने में बहुत सुलभ और सब दुःखों के हरने वाले हैं॥4॥ सोरठा :

*** सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल। अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥140॥

भावार्थ:

देवता, मनुष्य और मुनियों में ऐसा कोई नहीं है, जिसे भगवान की महान बलवती माया मोहित न कर दे। मन में ऐसा विचारकर उस महामाया के स्वामी (प्रेरक) श्री भगवान का भजन करना चाहिए॥140॥

चौपाई :

***अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥ जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥1॥

भावार्थ:

हे गिरिराजकुमारी! अब भगवान के अवतार का वह दूसरा कारण सुनो- मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ- जिस कारण से जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित (अव्यक्त सच्चिदानंदघन) ब्रह्म अयोध्यापुरी के राजा हुए॥1॥

*** जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा॥ जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥2॥

भावार्थ:

जिन प्रभु श्री रामचन्द्रजी को तुमने भाई लक्ष्मणजी के साथ मुनियों का सा वेषधारण किए वन में फिरते देखा था और हे भवानी! जिनके चरित्र देखकर सती के शरीर में तुम ऐसी बावली हो गई थीं कि- ॥2॥

*** अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥ लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥3॥

भावार्थ:

अब भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया नहीं मिटती, उन्हीं के भ्रम रूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो। उस अवतार में भगवान ने जो-जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा॥3॥

*** भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥ लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥4॥

भावार्थ:

(याज्ञवल्क्यजी ने कहा-) हे भरद्वाज! शंकरजी के वचन सुनकर पार्वतीजी सकुचाकर प्रेमसहित मुस्कुराईं। फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारण से भगवान का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे॥4॥ **अगला पेज...**

रामचरित्मानस

बालकाण्ड